RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-04
Issue-04
April -2019

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com [UGC Listed Journal]

कबीर के काव्यत्व की विशिष्टता

डॉ0 जयराम त्रिपाठी

सहा0 प्रोफेसर (हिन्दी) हेमवती नंदन बहु0 राज0 स्नातको0 महा0 नैनी, इलाहाबाद

मूल शब्द– काशी, मगहर, नीरू–नीमा, मूर्ति पूजा एवं हिन्दू–मुस्लिम।

अनहद–नाद और अजपा–जप का उद्घोष करने वाले संत कबीर के तप और आत्मबल की ही वह शक्ति थी जो उन्हें मृत्यु से पूर्व मोक्ष दायिनी काशी के परिवेश से अभिशप्त मगहर खींच लाई। इस तप की शक्ति और संभावनाओं के रूप में हाल फिलहाल उनके जन्म के रूप में कबीर शोध अकादमी की स्थापना चर्चा में है। कबीर का जन्म भारतीय इतिहास के सल्तनत काल में होता है, इस्लाम धर्म शासक के रूप में है और अधिसंख्यक हिन्दू जनता शासित हैं। भारतीय समाज अनेक प्रकार के भेदभावों से ग्रस्त है और जनता इनमें जीने के लिए अभ्यस्त। इस असमानता से ग्रस्त समाज में कहते हैं कबीर का जन्म एक विधवा ब्रह्मणी के गर्भ से हुआ, लोक भय से उसने नवजात बालक को एक तालाब के किनारे छोड़ दिया, कबीर का पालन, पोषण नीरू–नीमा नामक मुस्लिम दम्पत्ति के यहाँ हुआ सन् 1206 में सल्तनत काल के गुलाम वंश की स्थापना के पश्चात् ही भारत में धर्म परिवर्तन की शुरूआत हुई और अलाउद्दीन खिलजी तक आते–आते बड़े पैमाने पर धर्म परिवर्तन हो चुका था। नीरू–नीमा के जिस परिवार में कबीर का पालन–पोषण हुआ वह दो–तीन पीढ़ी पहले ही इस्लाम धर्मानुयायी हुए थे और उनके पूर्व धर्म के संस्कार सम्पूर्ण रूप से समाप्त नहीं हुए थे।

कबीर की सामाजिक परिस्थितियों ने कबीर के व्यक्तित्व निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। कबीर ने समाज में व्याप्त इस असमानता को देखा और यह महसूस किया कि इसके लिए हिन्दू और मुसलमान समान रूप से दोषी हैं उनका कथन था कि ईश्वर के समक्ष हिन्दू–मुस्लिम सभी समान हैं और उसने किसी प्रकार का भेदभाव पैदा करते समय नहीं किया है जो भी भेद उत्पन्न करने वाले चिन्ह हैं उन्हें मनुष्य ने स्वयं बनाया है। कबीर का मानना था कि जब बनाने वाले ने कोई अंतर नहीं किया है तब इस संसार में छद्म अंतर उत्पन्न करने वाले तथाकथित ठेकेदारों को भेदभाव का कोई अधिकार नहीं है। एक ही ईश्वर से उत्पन्न दो लोगों के मध्य इतनी असमानता कैसे हो सकती है कि एक को तो मूर्ति पूजा का सम्पूर्ण अधिकार है जबकि दूसरे के लिए मूर्ति के स्पर्श तक को निषेध कर दिया गया है। कबीर की दृष्टि धार्मिक, सामाजिक, दार्शनिक आदि सभी पक्षों के प्रति सर्वथा अलग तत्कालीन समाज से अग्रगामी प्रकार की थी–

''कस्तूरी कुंडलि बसै मृग ढूढैबन मांहिं।
ऐसे घट–घट राम हैं दुनिया देखै नाँहिं।।''

धार्मिक अंधविश्वासों से जकड़े हुए समाज में जिस में मंदिर, मस्जिद और विभिन्न पंथो के मठ जनता को लूटने के स्थल बन गए थे उसमें इस प्रकार का उद्घोष निश्चित ही क्रांति का संकेत प्रदान करता है। कबीर अपने जीवन के प्रत्येक क्षण में मानवता के लिए प्रयास करते रहे इसीलिए वह सच्चे अर्थों में मानवतावादी हैं। कबीर में किसी धार्मिक अथवा सामाजिक परंपरा का विरोध तभी था जब वह मानवता के लिए अहितकर है, मानवता के हित की सभी विचार धारायें उन्हें स्वीकार थीं उन्होंने सिद्धों–नाथों से योग साधना तथा हठयोग ग्रहण कर लिया, वैष्णवों से अहिंसा ग्रहण की हिन्दुओं से अद्वैत तथा सूफियों से रहस्यवाद ग्रहण कर लिया, इसी प्रकार जिस भी मत में जो त्याज्य था उसे उन्होंने छोड़ दिया हिन्दुओं की जाति प्रथा छोड़ी तो मुस्लिमों की हिंसा छोड़ दी। सभी प्रकार की कुरीतियों का विरोध करते हुए कबीर वैयक्तिक साधना को लोक साधना का रूप देते रहे। उनका हाथ हमेशा लघुमानव के साथ रहा–

''दुर्बल को न सताइये जाकी मोढी हाय।
मुई खाल की स्वांस सों सार भसम हवै जाय।।''

कबीर के संदर्भ में विचार करते हुए **विजयेन्द्र स्नातक** ने लिखा है ''उत्तर भारत में भक्ति को सर्वसाधारण तक पहुँचाने का श्रेय सबसे पहले रामानन्द को दिया जाता है तथा उनके बाद भक्त कबीर को दिया जाता है। रामानन्द ने भक्ति को एकान्तिक साधना मानते हुए भी मानव मात्र के लिए सुलभ बनाया था तो कबीर ने उसे लोकमानस में सहजता के साथ पैठने का मार्ग बता कर शास्त्र के बंधनों से मुक्त कर दिया।'[1]

कबीर कई अर्थों में अनोखे संत थे उनके जन्म से मृत्यु तक की घटनाएँ उन्हें सामान्य से विशिष्ट बनाती हैं उनके जन्म के सम्बन्ध में अनेक किंवदंतियाँ हैं, इसके बाद वह ऐसे संत हैं, जो गृहस्थ हैं उन्होंने गृह त्याग नही किया। उनकी मृत्यु पर भी विवाद हुआ हिन्दुओं और मुस्लिमों ने अपनी–अपनी रीति से अंतिम संस्कार करना चाहते हैं कफन हटाने पर अर्थी में केवल फूल थे शरीर गायब था। यह कारण

RRIJM 2015, All Rights Reserved

था कि कबीर ने सभी प्रकार के बाह्यडंबरों का विरोध किया और केवल मन की पवित्रता पर बल दिया। उनकी दृष्टि में सभी प्रकार का दिखावा ईश्वर प्राप्ति के मार्ग में बाधा है उसकी प्राप्ति के लिए इस प्रकार का कोई साम्प्रदायिक उपकरण आवश्यक नहीं है–

''मन ऐसो निर्मल भया जैसे गंगा नीर।
पाछे पाछे हरि फिरैं कहत कबीर–कबीर।।''

उनके मत से आत्म ज्ञान और ईश्वर प्राप्ति हेतु केवल निर्मलता पर्याप्त है वह उत्पन्न हो गई तो ईश्वर प्राप्ति सहज ही हो जायेगी।

कबीर के काव्यत्व की समझ आसान नहीं है यदि हम रस–छंद–अंलकार के साँचे में उतारकर साहित्यशास्त्र के आधार पर उन्हें विश्लेषित करना चाहेंगे तो शायद वे हमारे बनाए हुए मानकों पर खरे न उतरें। कबीर के काव्य में सब कुछ सहज है उनका योग भी सहज है स्वतः प्रेरित स्वतः ध्वनित– कबीर के सम्पूर्ण जीवन की तरह ही निश्छल निर्मल। इसीलिए कवि चर्चा करते हैं अजपा जप की और अनाहत नाद की घोषणा करते हैं–

'सुन्न मरै, अजपा मरै, अनहद हू मरि जाय।
राम सनेही ना मरै कह कबीर समुझाय।।''

इसीलिए कबीर का किसी धर्म से विरोध नहीं था बल्कि धर्म में व्याप्त बुराई से विरोध था वे जहाँ शाक्तों से घृणा करते थे वहीं वैष्णवों से प्रेम।

इस प्रेम को कवि कबीर ने कई स्थलों पर ईश्वर प्राप्ति के सर्वाधिक सरल और सुलभ मार्ग के रूप में व्याख्यायित किया है।

''कबीर के लिए पांडित्य की परिभाषा ज्ञान की परिभाषा है–जिसने प्रेम के ढाई अक्षर पढ़ लिये हैं और प्रेम के ढाई अक्षर पढ़ने का कोई उपाय पोथी में नहीं है; जीवन की पोथी में ही पढ़ना पड़े; जीवन के विद्यालय में ही आना पड़े; जीवन के प्रांगण में ही वे ढाई अक्षर पढ़े जा सकते हैं।''[2] अपने इसी आधुनिकता बोध के कारण कबीर अपने समकालीन बड़े कवियों जायसी, सूर और तुलसी की तुलना में सर्वाधिक प्रासंगिक हैं।

डॉ0 राजदेव सिंह ने कबीर की प्रासंगिकता पर विचार के क्रम में लिखा है ''जिन दिनों कबीर का आविर्भाव हुआ था साधारण हिन्दू गृहस्थों में पौराणिक मत प्रबल था। देश में और भी अनेक प्रकार की साधनाएँ प्रचलित थीं। लेकिन कबीर ने अनुभव किया कि उनमें कहीं कोई सार नहीं है, सभी भ्रान्त हैं।''[3]

कबीर ने जो महसूस किया उसी का प्रचार करने लगे।

''यह जिन जानौ गीत है यह निज ब्रह्म विचार।'' के कथन के द्वारा कबीर ने जैसे स्वयं कविता को दोयम स्थान प्रदान कर दिया है।

''मसि कागद छूयो नहीं कलम गही नहिं हाथ'' द्वारा वह अपने अनपढ़ होने को भी स्वीकार करते हैं। कबीर के आधुनिकता बोध का पता उनके संदर्भ में प्रचलित एक किंवदंती कि सिकंदर लोदी के कारण उन्हें काशी छोड़ना पड़ा' से भी चलता है। हालांकि आज की विद्रोही छवि से– जो हम वर्तमान लोक तंत्र में देख रहे हैं–कबीर के समय की तुलना नहीं कर सकते हैं। अंग्रेजों के आने के पहले तक राजा को कोई बात न पसंद आने पर उसके द्वारा खाल उतरवा लेना आम घटना था। इस प्रकार के परिवेश में किसी राजा द्वारा कबीर जैसे व्यक्तित्व को विद्रोही मान लेना कोई विशेष बात नहीं थी। परंतु कबीर के काव्य में कवित्व विद्यमान होने को लेकर प्रारंभ से ही असमंजस की स्थिति बनी रही है। इस पर विचार करते हुए पुरुषोत्तम अग्रवाल ने लिखा है–'' कबीर के कवित्व के प्रसंग में जो बात सबसे पहले ध्यान खींचती है वह है उन्हें कवि मानने में सर्वव्यापी संकोच। कबीर की कविताओं का अंग्रेजी में श्रेष्ठतम अनुवाद करने वाली **लिंडा हैस्स** ने जरूर कबीर को प्राथमिक रूप से कवि मानते हुए उनके कवित्व पर बहुत सघन और अंतर्दृष्टि–सम्पन्न विचार किया है; बाकी अध्येता कबीर की व्यंग्य प्रतिभा की प्रखरता मानते हुए भी कबीर को वाणी का डिक्टेटर मानते हुए भी उनके कवित्व को मानने में संकोच बरतते हैं।''[4]

हिन्दी साहित्य के इतिहास में आचार्य शुक्ल का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास में कबीर के संदर्भ में लिखते हुए अंतिम पंक्ति इस प्रकार लिखी है, ''कबीर की उक्तियों में कहीं–कहीं विलक्षण प्रभाव एवं चमत्कार हैं। प्रतिभा उनमें बड़ी प्रखर थी उसमें संदेह नहीं।'' परन्तु इसके ठीक पहले की पंक्ति है ''भाषा बहुत परिष्कृत और परिमार्जित न होने पर भी.....''। इस प्रकार असमंजस की स्थिति बनी रहती है। हालांकि कबीर के क्रांतिकारी व्यक्तित्व को सभी समीक्षकों ने स्वीकार किया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने यदि उन्हें 'वाणी का डिक्टेटर' कहा है तो 'नाभादास' ने अपने 'भक्तमाल' में '' कबीर कानि राखी नहीं वर्णाश्रम षट्दर्शनी' लिखकर उनकी अक्खडता का लोहा माना है।

हालांकि प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास जो तीन काव्य हेतु हैं उसके अनुसार निश्चित रूप से कबीर कवि ठहरते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कबीर न केवल संत और समाज सुधारक थे बल्कि एक अत्यंत प्रतिभाशाली कवि भी थे।

RRIJM 2015, All Rights Reserved

सन्दर्भ

1. विजयेन्द्र स्नातक रमेश चन्द्र मिश्रा : कबीर वचनामृत (नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली–1999) पृ0–47
2. ओशो : कहै कबीर मैं पूरा पावा (अरेबेल बुक्स–2003), पृ0–14
3. डॉ0 राजदेव : कबीर–आधुनिक संदर्भ में (लोक भारती प्रकाशन–2008) पृ0 05
4. पुरुषोत्तम अग्रवाल : अकथ कहानी प्रेम की (राजकमल प्रकाशन–2013), पृ0–59–60

RRIJM 2015, All Rights Reserved